International Journal of History 2024; 6(1): 175-178

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2024; 6(1): 175-178
Received: 08-03-2024
Accepted: 12-04-2024

नवीन नवनीत
शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
नवीन नवनीत
शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

बिहार के विभिन्न पुरस्थलों से प्राप्त जैन मूर्तियाँ एक अध्ययन

नवीन नवनीत

प्रस्तावना
कुछ जैन विद्वानों के अनुसार तीर्थंकर की प्रतिमा सिन्धु सभ्यता में बनने लगी थी। हड़प्पा से प्राप्त लाल पत्थर की शीर्षहीन भग्नमूर्ति लोहानीपुर वाली मौर्यकालीन जिन की धड़ से मिलती–जुलती है लेकिन हड़प्पावाली मूर्ति के कन्धों के सामने दो बड़े–बड़े वृताकार गहराव है जो अभी तक प्राप्त जिन प्रतिमाओं पर नहीं पाये जाते। उमाकान्त प्रेमानन्द शाह के अनुसार हड़प्पावाली मूर्ति किसी प्राचीन यक्ष का प्रतिनिधित्व करती है और साथ ही भारतीय कला की हड़प्पा युग से मौर्य युग तक की अविच्छिन्नता साबित करती है तथा यूनानी स्रोत से बौद्ध जैन मूर्ति की शुरूआत वाली पूर्व धारणा को ध्वस्त करती है। हड़प्पा संस्कृति की मूर्तिकला और मौर्यकालीन मूर्तिकला अपने–अपने क्षेत्र में नैसर्गिक तरीके से विकसित तत्कालीन स्थानीय कलाकारों की हुनर की देन थी। हड़प्पा की मूर्तिकला और जैन मूर्तिकला को एक दूसरे से प्रभावित होने का प्रश्न ने ही उठता है क्योंकि दोनों के समय में लगभग डेढ़ हजार वर्षों का अंतर है तथा इन दोनों को जोड़ने वाली कोई अविच्छिन्न संस्कृति नहीं है और न मिलने की सम्भावना है।[1]

लोहानीपुर जिन प्रतिमा
अभी तक जितनी जैन मूर्तियां मिली है उनमें बिहार (लोहानीपुर, पटना) से ही प्राप्त पत्थर की बनी जिन की धड़ प्रतिमा प्राचीनतम है चूंकि इस पर मौर्यकालीन विशिष्टतायुक्त पॉलिश है अतएव निःसंदेह इसकी तिथि ई० पूर्व तीसरी शताब्दी स्थापित हो जाती है। (फलक संख्या 1) इसके पूर्व बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्मों में भी कोई प्रस्तर मूर्ति नहीं बन पायी थी। इस मूर्ति के कलाकार के सामने बिहार (पटना) की ही यक्ष–प्रतिमा आदर्श स्वरूप थी। उमाकान्त प्रेमानन्द शाह के मतानुसार बौद्ध प्रतिमा के कलाकारों ने भी इसी बिहार (मगध) के कलाकारों के इस जैन प्रतिमा–नमूने को आदर्श माना होगा। इस प्रकार प्रस्तुत जिन प्रतिमा से मात्र जैन कला के प्रारम्भ की अति प्राचीनता तथा ईसवी सन् की प्रारम्भिक काल तक की अविच्छिन्नता ही विदित नहीं होती बल्कि इससे भारतीय कला का देशज चरित्र भी स्वतः परिलक्षित होता है। इस जिन–प्रतिमा के प्रकाश में आने के पूर्व तक यह भारतीय धारणा भी बनी हुई थी कि भारतीय कलाकारों ने मूर्ति बनाने की कला यूनानी कलाकारों से सीखी क्योंकि बुद्ध की जो प्राचीनतम मूर्ति उस समय गांधार से मिली उस पर यूनानी कला की छाप थी। प्रस्तुत जिन प्रतिमा ने उक्त धारणा को ध्वस्त कर सम्पूर्ण भारतीय मूर्ति कला को पूर्णतः देशज साबित कर दिया। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि लोहानीपुर वाली जिन प्रतिमा गांधार अथवा मथुरा कहीं की भी बुद्ध प्रतिमा से प्राचीनतर है। इस प्रतिमा के साथ एक वर्गाकार मंदिर से अनेक मौर्य कालीन ईंटे, चांदी की एक घिसी–पिटी आहत मुद्रा और एक बिना पॉलिश वाली पत्थर की बनी किसी जिन की कायोत्सर्ग मुद्रा में धड़ प्रतिमा उपलब्ध हुई। इसी स्थल से बनर्जी शास्त्रीय का मौर्यकालीन प्रस्तर निमित भग्न मस्तक मिला था जो किसी जैन मूर्ति का ही प्रतीक हुआ था।[2]

जीवन्तस्वामी की मूर्ति
साहित्यिक तथा अभिलेखीय साक्ष्य जैन मूर्तिकला के अस्तित्व को मौर्यो से भी प्राचीनतर युग में ले जाते हैं। प्राचीन साहित्यिक जैन ग्रंथों आवश्यक चूर्णी, निशनतर चूर्णी तथा वसुदेवहिण्डि के आधार पर उमाकांत प्रेमानन्द शाह ने विदिशा और वीतभयपतन में जीवन्तस्वामी की मूर्ति की पूजा की परम्परा का उल्लेख किया है। कहा जाता है कि गृह–त्याग करने (संन्यास लेने) से एक वर्ष पूर्व ही वर्धमान महावीर जब अपने राजमहल में ही ध्यानावस्थित थे उनकी चंदन–काष्ठ की प्रतिमा बना ली गयी थी। इसकी तिथि कम से कम छठी शताब्दी ई० पूर्व होगी क्योंकि भगवान महावीर का जीवन 561–490 ई० पूर्व के अंतर्गत था तथा उनके ग्रह त्याग का समय लगभग 532 ई० पूर्व रहा होगा।[3]

खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख
उदय गिरि की हाथीगुम्फा नामक प्राकृतिक गुफा में शुंगकालीन (150 ई० पूर्व) जैन धर्मावलम्बी

सम्राट खारवेल का लम्बा अभिलेख अंकित है। इस अभिलेख के अनुसार अंकित है। इस अभिलेख के अनुसार इधर हाल तक लोग मानते रहे हैं कि खारवेल मगध पर चढ़ाई कर कलिंग से किसी नन्द राजा द्वारा लाई गयी जिन प्रतिमा को पुनः कलिंग ले गया लेकिन बेनी माधव बरुआ के द्वारा उक्त अभिलेख के पुनर्गठन में कलिंग को जिन प्रतिमा का उल्लेख नहीं आता। यदि अभिलेख का पहला पाठ सही माना जाता है तो प्रश्नचिह्नत जिन प्रतिमा का संबंध बिहार से होता है तथा इससे साबित होता है कि मौर्यकाल से पहले ही नन्द राजाओं के समय में बिहार जिन प्रतिमा से सम्बद्ध ही नहीं था बल्कि जिन प्रतिमा को पूजक भी था तभी तो नन्दों के समय (पांचवी–चौथी शताब्दी ई० पूर्व) से खारवेल के समय (150 ई० पूर्व) तक प्रश्न–चिह्नत जिन–प्रतिमा कलिग की होती हुई भी मगध में बरकरार और सपूज्य रही।[4]

चौसा

बिहार राज्यान्तर्गत बक्सर जिले के चौसा नामक स्थल से प्राप्त कुछ 18 अपरिष्कृत कास्य कलात्मक वस्तुएं जैन धर्म से संबंध रखती है। (फलक संख्या 2) कुषाण कालीन कांस्य जैन प्रतिमाएँ, जो कुमारस्वामी के विचारानुसार आदिम तथा भद्री है धीरे–धीरे विकसित होकर गुप्तकाल के स्थापत्य में अपना स्थान ग्रहण करती है। चौसा से प्राप्त कुछ कांस्य जैन मूर्तियाँ इसी संक्रमण काल की प्रतीत होती है। ऋषभ की मूर्तियों सर्वप्रथम कुषाण काल में बने जिनके उदाहरण चौसा और मथरा से मिले है। इन उदाहरणों में ध्यानमुद्रा में विराजमान या कार्यात्सर्ग में खड़े ऋषभ के कन्धों पर तीन या पांच केशवल्लरियाँ दिखायी गयी है। ऋषभ की मूर्तियों के गुप्तकालीन उदाहरण चौसा से मिले हैं।[5]

राजगीर

बिहार का नालंदा जिलान्तर्गत राजगीर जैन कला का बहुत बड़ा स्त्रेत स्थल है। यहाँ के सोनभण्डार नामक स्थल में उपलब्ध ईसा की प्रथम शताब्दी की लिपि में अंकित अभिलेख से ज्ञात होता है कि मुनि वैरदेव नामक श्वेतांबर आचार्य रत्न ने जैन संन्यासियों तथा जिन प्रतिमाओं के निर्मित पहाड़ कटवा कर दो गुफाएं बनवायी थी। राजगीर की वैभार पहाड़ी के ऊपर प्राचीन जैन मंदिर के खण्डहर से गुप्तकालीन जैन कला की प्रस्तर प्रतिमाएं प्राप्त हुई है। उक्त मंदिर के केन्द्र में एक बड़ा कक्ष है जो चारो तरफ छोटे –छोटे कमरों की पंक्ति से आवृत्त हैं इसी के पूर्वी दीवार के सटे और मुख्य इमारत के नीचे के एक कक्ष के अंदर एक ताखे से नेमिनाथ की बैठी प्रतिमा मिली है जिसकी चरणचौकी पर गुप्तकालीन लिपि के अभिलेख में गुप्त सम्राट द्वितीय चन्द्रगुप्त का उल्लेख हैं। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत प्रतिमा तीर्थंकरों के लांछन के प्रवेश का प्राचीनतम नमूना है जिसके लिए निश्चित तिथि निर्धारित होती है। इसमें चरण–चौकी के मध्य में धर्मचक्र की दोनों बगली में एक–एक शंख है लेकिन इसमें अधिक ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि धर्मचक्र के सामने एक राजकुमार का सुन्दर अंकन है तथा धर्मचक्र उसके प्रभामंडल का कार्य करता है। यह राजकुमार नेमिनाथ नही है जैसा पहले लोग समझते थे यह चक्रपुरुष है जो गुप्तकालीन अवधारणा है। चक्रपुरुष की दोनों बगलों में प्रसिद्ध मान कुवर वाली बुद्ध मूर्ति की तरह शिरमुण्डि पद्यासन में बैठी दो छोटी–छोटी जिन की आकृतियाँ है। अन्य ताखों पर ईसा की चौथी शताब्दी की तीर्थंकरों की तीन खड़ी प्रतिमाएं है जिनके कन्धों में बहुत हद तक कुषाणकालीन कठोरता प्रतीक होती है।[6]

राजगीर की वैभार गिरि के ईंट–निर्मित ध्वस्त जैन मंदिर से तीर्थंकर (आदिनाथ) की प्रस्तर की प्रतिमा जिसकी चरण चौकी पर बसन्तनन्दी नामक भिक्षु का नाम आठवीं शताब्दी की लिपि में अंकित है तथा सोनभण्डार से एक प्रस्तर निर्मित चौमुख जैन मूर्ति मिली हैं वैभारगिरि के उपर्युक्त स्थल से कुछ और प्रस्तर प्रतिमाएं तथा नालंदा के स्थल संख्या 9 से एक प्रस्तर प्रतिमा मिली है जो ईसा की नवीं शताब्दी की है। नवीं–दसवीं शताब्दी की एक चतुर्भुजी यक्षी देवी पद्मावती की प्रतिमा नालंदा के स्थल संख्या 9 से मिली है जो अद्भूत है।

जैन कला के क्षेत्र में बिहार राज्यान्तर्गत पुरातत्व स्थलों से उपलब्ध मृण्मय हरिनैगमेश अथवा नैगमेय नामक देवता की मूर्तियाँ महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसे देवता के बकरे का मुख तथा मानव का शरीर होते हैं। यह देवता जैन देवताओं के पैदल सैन्य दल का प्रमुख होता है। कहा जाता है कि इसी देवता के द्वारा ब्राह्मणी देवनन्दा के गर्भ से वर्धमान (महावीर) को श्रत्रणी त्रिशला के गर्भ में संक्रमिक किया गया था। नैगमेश के हाथ खाली दिखलाये गये हैं तथा इसके साथ कोई वाहन भी नहीं होता। कहीं–कहीं इसके शरीर के साथ खेलनेवाले बच्चा ही इसकी मुख्य विशेषता है। प्रारम्भ में इसे शिशु के जन्म के निमित पीठासीन देवता माना गया और इसे केवल स्कन्ददेव के रूप में नैगमीय नाम से जाना जाता था। काल क्रम में इसकी मूर्तियाँ नर और मादा दोनों से मिलती हैं जिनके मुख बकरे के होते हैं। भारत के रूप में मानवीय मुखवाली नैगमेश की मूर्ति मिली है। बिहार (कुम्रहार) में ईसा की प्रथम शताब्दी से पांचवी शताब्दी के बीच के स्तरों में नैगमेश की मृण्मय मूर्तियाँ पायी गयी है। वैशाली उत्खनन से तो नैगमेश दम्पति की बच्चे के साथ वाली मूर्ति मिली है।[7]

मानभूमि से भी पार्श्वनाथ तथा महावीर की धातु प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है। इसमें दोनों कार्यात्सर्ग अवस्था में है। पार्श्वनाथ के सात सर्प के फन तथा महावीर का सिंहासन उल्लेखनीय है।[8]

चौसा में अठारह जैन कांस्य मूर्तियों की आकस्मिक प्राप्ति ने इस बात की संभावना को बढ़ा दिया है कि उक्त स्थान या उसके समीपवर्ती स्थानों से प्राचीन जैन पुरावशेष मिल सकते हैं। दुर्भाग्यवश यहाँ भी सुनियोजित सर्वेक्षण और उत्खनन के आधार पर अन्वेषण नही किया गया। प्राप्त पुरावशेषों में तीर्थंकरों की सोलह मूर्तियां, एक अशोक वृक्ष और एक स्तंभ पर एक धर्मचक्र सम्मिलित है। इनमें से धर्मचक्र की तिथि ईसा की पहली शताब्दी निर्धारित की जा सकती है। तीर्थंकरों की मूर्तियों में दस कार्यात्सर्ग मृदा में है जबकि छह पदमासन ध्यान मुद्रा में। यह मूर्ति–समूह इस तथ्य के कारण अत्यंत मूल्यवान है कि ये मूर्तियां लगभग चार सौ वर्षों के दीर्घकाल में निर्मित हुई है और ये प्रायोगिक युग से लेकर गुप्त युग की सुनिर्मित ललित मूर्तियों के चरमोत्कर्ष तक कांस्य मूर्तिकारों की कलात्मक उपलब्धियों का लेखा प्रस्तुत करती है। पद्मासन मूर्तियों में से दो शैली के आधार पर परवर्ती कुषाणयुग से आधगुप्त युग तक ही हो सकती है।

सभी दिगंबर खड्गासन मूर्तियां कुषाण–पूर्व से लेकर गुप्त काल तक की है। इनमें से कुछ मूर्तियाँ ठूँठ जैसी टाँगों, अपरिपक्व कौशल और बेडौल प्रतिरूप वाली है तथा लोक परंपराओं पर आधारित है। ये आदिम मूर्तियाँ कुषाणयुग से कुछ पहले की प्रतीत होती है। पटना संग्रहालय की मूर्ति क्रमांक 6530 कुषाण कला का एक सुंदर उदाहरण है। विशाल वक्ष, गोल मुख और उन्मीलित नेत्र इसकी विशेषताएं है और यह मथुरा–कला की परंपरा में है। यहां भी टांगों के निर्माण पर ध्यान नहीं दिया गया। तीसरी, चौथी शती में निर्मित मूर्तियों में विभिन्न अंगों की आनुपातिक और सुंदर रचना से पर्याप्त प्रगति परिलक्षित होती है। किसी भी मूर्ति में परिचय चिन्ह का निर्माण नहीं किया गया जिसके परिणामस्वरूप ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ की पहचान क्रमशः उनकी जटाओं और कणावली से ही की जा सकती है। एक सुरक्षित मूर्ति के वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह स्पष्ट दृष्टि गोचर होता है। इनके अतिरिक्त राजगीर के मनियार मठ से भी कुछ नागी मूर्तियाँ मिलने की सूचना प्राप्त हुई है। यद्यपि जैन सृष्टि विद्या में नागी की व्यन्तर लोक के किन्नरो की कोटि में रखा जाता है परन्तु मनियार मठ से प्राप्त साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि इन वस्तुओं का जैनी से संबंध नहीं है। इसके विपरीत यह

संकेत मिलता है कि राजगृह में एक प्रकार का सर्वदेव मंदिर था जिसमें ऐसे नाग देवता प्रतिष्ठित थे जिन्हें आसपास के क्षेत्रें के लोग पूजते थे।[9]

अलुआरा (धनबाद) में 29 कांस्य मूर्तियाँ खोजी गयी जिनमें से 27 तीर्थंकरों की है वे अब पटना संग्रहालय में संग्रीत है। इस समूह की अधिकांश तीर्थंकर–मूर्तियों के ललाट पर ऊर्णा का अंकन है। तीर्थंकरों की खड्गासन मूर्तियों में हथेलियाँ आक्र अंगुलियों शरीर का स्पर्श करती है। इन मूर्तियों के पादपीठी पर विभिन्न प्रकार की पट्टिकाओं के मिले–जुले अलंकरण है। सभी पर लांछन अंकित है जिनके कारण ऋषभदेव, चन्द्रप्रभ, अजित नाथ, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, महावीर और अंबिका की पहचान की जा सकती है। उनमें से कुछ की शैली के आधार पर ग्यारहवीं शती की माना जा सकता है।[10]

नालंदा के पुरातत्व संग्रहालय में संगृहीत फणावलियुक्त नारी की पाषाण मूर्ति उल्लेखनीय है जिसे संदेहवश जैन यक्षी पद्मावती कह दिया है। यह नौवीं–दसवीं शताब्दी की हो सकती है।

इस अवधि में जैन धर्म और कला का एक महत्वपूर्ण केन्द्र सिंहभूम जिले में भी था जैसा कि वैणीसागर में विद्यमान पुरावशेषों से निश्चित होता है जिन्हें बेंग्लर ने सातवीं शती का माना है। तथापि वेणीसागर के पुरावशेषों का सर्वेक्षण नये सिरे से किया जाना चाहिए।[11]

जैन प्रतिमाओं में अधिकांश संख्या तीर्थंकरों की हैं इनके अतिरिक्त कुछ यक्ष और यक्षिणी प्रतिमाएं भी हैं। बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की विशेष यक्षी अंबिका की भी कुछ स्वतंत्र प्रतिमाएं प्राप्त है जो संख्या में गिनी चुनी हैं। वस्तुतः कई तीर्थंकरों की प्रतिमाएं अन्य तीर्थंकरों की अपेक्षा अधिक संख्या में पायी गयी है किन्तु कहीं–कहीं तीर्थंकरों को एक भी प्रतिमा उपलब्ध नहीं है।[12]

पटना संग्रहालय स्थित अलौरा से प्राप्त कांस्य प्रतिमाओं का रचना काल बारहवीं शताब्दी से पूर्व मानना कठिन होगा। अलौरा के अलौरा से प्राप्त कांस्य प्रतिमाओं का रचनाकाल बारहवीं शताब्दी से पूर्व मानना कठिन होगा। अलौरा के भूमिगत भंडार से 26 प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें से कुछ अभिलेखांकित है। अभिलेखों में इन मूर्तियों के दानदाताओं का उल्लेख है जिनमें से एकाध आचार्य भी है। इन प्रतिमाओं में से एक में लाछना सहित तीर्थंकर ट्टषभनाथ और महावीर को अंकित यिका गया है। यहाँ यह उल्लेख करना भी उपर्युक्त रहेगा कि इस भंडार के वर्गीकरण से यह ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में लगभग इसी काल के अंतर्गत कोने–कोने से तीर्थंकर अधिक लोकप्रिय थे इस वर्गीकरण के अनुसार सबसे अधिक प्रतिमाएँ ट्टषभनाथ की है जिनकी संख्या आठ है इसके उपरांत महावीर और कुन्थुनाथ का दूसरा स्थान है जिनकी छह–छह प्रतिमाएँ है। चन्द्रप्रभ एवं पार्श्वनाथ की दो–दो प्रतिमाएँ तथा अजितनाथ, विमलनाथ एवं नेमिनाथ की एक–एक प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त अंबिका यक्षी की प्रतिमाओं का भी समूह यहाँ पाया गया है।

अलोरा से तेरहवीं शताब्दी की एक पाषाण प्रतिमा भी प्राप्त हुई है, जो तीर्थंकर शांतिनाथ के कार्यानसगे मुद्रा की है। पादपीठ पर उनका लांछन हरिण अंकित है। शीर्ष पर छत्र अंकित है। इस प्रतिमा पर अन्य अनेक तीर्थकरों की आकृतियाँ भी प्रदर्शित है।[13]

बिहार जैन धर्म का प्राचीनतम गढ़ है– तीर्थंकरों की बिहार स्थली है श्रमण संस्कृति का केन्द्र है जहां महावीर और बुद्धि ने सांसारिक प्राणियों को शाश्वत धर्म का उपदेश दिया। वज्जि, मगध और अंग उसके प्रधान महाजनपद थे। लिच्छवि और विदेह उसके प्रधान राजकुल थे। भगवान महावीर का समकालीन शिशुनागवंशीय राजा श्रेणिक बिम्बिसार मगध का प्रधान नरेश था जिसका पारम्परिक संबंध जैन धर्म से रहा है। राजगृह उसकी राजधानी थी। वैशाली नरेश चेटक कोशल नरेश प्रेसनजित आदि राजाओं से भी उसका पारिवारिक संबंध रहा है। प्रेसनजित की पुत्री चेलना से उत्पन्न कुणाल अजातशत्रु उसका उत्तराधिकारी बना। उसके उत्तराधिकारी उदायी आदि भी प्रभावी राजा हुए। ये सभी नरेश जैन धर्म के अनुयायी रहे हैं। यह तीर्थंकर और अन्य साधकों की भूमि रही है। वज्जि विदेह–वर्तमान तिरहुत क्षेत्र जनपद तीर्थंकर नेमिनाथ, मल्लिनाथ एवं वर्धमान के जन्म, तप वर्षावास एवं समावशरण के संदर्भ में जाना जाता है तो भंगि जनपद (वर्तमान हजारीबाग क्षेत्र) के सम्भेद शिखर भद्रिकापुरी आदि क्षेत्र बाइस तीर्थंकरों और अन्य जैन साधकों की निर्वाणभूमि रही है। चाईवासा, संथाल कर्मनासा आदि स्थान जैन संस्कृति के प्रतीक है। लोहानीपुर पटना की प्राचीनतम भूमि और खारवेल के कलिंग जिनका संबंध भी बिहार से ही रहा है। लोहानीपुर पटना से प्राप्त जिन मूर्ति से पता चलता है कि मौर्यकाल में जैन धर्म जनधर्म बन गया। शुंगकाल, सातवाहनकाल, कुषाणकाल, गुप्तकाल और गुप्तोत्तरकाल में भी बिहार में जैन धर्म और संस्कृ ति पल्लवित होती रही। बारगांव (नालंदा) से प्राप्त शिलालेख के अनुसार यहां 22वीं शती तक जैन धर्म अच्छी स्थिति में था।

फलक संख्या 1: जैन तीर्थंकर (लोहानीपुर, पटना), मौर्य काल

फलक संख्या 2: जैन तीर्थंकर चन्द्रप्रभा (चौसा, बक्सर), 4थी शताब्दी ई.

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. घोष, अमलानंद, (1975), जैन कला एवं स्थापत्य, खण्ड–1, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 131
2. तिवारी, मारूतिनंदन प्रसाद, (1981), जैन प्रतिमा विज्ञान, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, पृ. 104, 189, 189

3. वही, पृ. 104, 190, 191
4. श्रीवास्तव, पंकजलता, (2012), हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान, पंकज प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 372
5. तिवारी, मारूतिनंदन प्रसाद, (1981), जैन प्रतिमा विज्ञान, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, पृ. 194
6. कुमार, ध्रुव, (2013), जैन धर्म और बिहार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 125, 126
7. श्रीवास्तव, पंकजलता, (2012), हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान, पंकज प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 372
8. तिवारी, मारूतिनंदन प्रसाद, (1981), जैन प्रतिमा विज्ञान, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, पृ. 296
9. वही, पृ. 106, 197, 198
10. वही, पृ. 197, 198, 296
11. कुमार, ध्रुव, (2013), जैन धर्म और बिहार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 127
12. श्रीवास्तव, पंकजलता, (2012), हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान, पंकज प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 373
13. कुमार, ध्रुव, (2013), जैन धर्म और बिहार, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 127